भारतीयता और पंडित दीनदयाल

डॉ. अनुराग श्रीवास्तव
असिस्टेंट प्रोफेसर, गणित विभाग, आर्य महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शाहजहांपुर

हमको आज भारतीयता की पूजा करनी है, किंतु भारतीय जीवन शून्य में तो अवस्थित है नहीं। वह मानव–जीवन का ही एक अंग है अतः विश्व में होनेवाली घटनाओं और चलनेवाली विचार क्रांतियों से वह अपने आपको कैसे अछूता रख सकता है? उनका उसपर परिणाम होगा ही। अतः भारतीय जीवन का विचार करते समय हमको संसार–सागर को उद्वेलित करनेवाली विचार–वीवियों को दृष्टिगत रखना ही होगा, अपनी तरी हमको सागर की अवस्था का विचार करके ही निर्माण करनी होगी।

आज तो यातायात के साधनों ने दुनिया के देशों को एक–दूसरे के निकट ला ही दिया है, अतः एक दूसरे पर परिणाम हुए बिना नहीं रहता, किंतु अंत में भी भिन्न–भिन्न देशों का इस प्रकार का संबंध रहा है। भारत का भी दुनिया के दूसरे देशों के साथ संबंध बहुत पुराने काल से रहा है। इस संबंध में जहाँ भौतिक जगत् की वस्तुओं के आदान–प्रदान से व्यापार वृद्धि हुई वहाँ विचार जगत् में भी आदान–प्रदान हुए। हमने दुनिया को बहुत कुछ दिया और उससे बहुत कुछ लिया। जहाँ विश्वगुरु के नाते हमने दुनिया को शिक्षा दी, वहाँ एक जिज्ञासु के नाते हमने छोटे–बड़े किसी से भी ज्ञान प्राप्त करने में संकोच नहीं किया। हाँ, जो कुछ हमने सीखा उसको अपना बना लिया। यह स्वाभाविक परंपरा चलती रही, इसमें भारतवर्ष किसी भी प्रकार का अपवाद नहीं था।

पिछले एक हजार वर्ष में हमारे और दुनिया के इस संबंध में विकृति आ गई। हम गुलाम हो गए। हमारा संबंध बाहर के देशों से समानता का नहीं रहा। दासता ने हमारी शक्ति क्षीण कर दी। अब दुनिया के अन्य देशों के साथ सम्मानपूर्वक आदान–प्रदान नहीं रहा, अपितु उन्होंने जबरदस्ती हमको लूटा और बदले में दया के दानस्वरूप जूठन और भिक्षा दी। हमने लूट को रोकने के लिए शक्ति भर प्रयत्न किया और दया के दान को हमारे आत्मसम्मान ने ठुकराया। भिक्षा में भी कई बार विष ही दिया गया, अतः एक अविश्वास ने भी हमारे मन में जड़ जमा ली। हमने भारतीय की रक्षा के लिए सर्वबाह्य विचारों का विरोध किया। किंतु हमारा संबंध तो बाह्य सत्ताओं से आया ही था, दुनिया में होनेवाली विचार क्रांतियों का परिणाम हमारे ऊपर होना ही चाहिए, वह हुआ। शासन वर्ग ने भी हमारे अपनेपन को समाप्त करने के लिए अपनी संस्कृति और सभ्यता का बोझ हमारे ऊपर लादा और वह हमको अनिच्छा से ही कयों न हो, करना ही पड़ा। इसी एक हजार वर्ष का विकृत अवस्था का परिणाम आज का भारतवर्ष है।

इस भारतवर्ष को आज हमें स्वरूप देना है। आज उसके स्वको जागृत करना है। जो विकृति आ गई है उसको दूर निकालकर फेंकना है। आज अपनेपन को पहचानकर दुनिया के

साथ कंधे के साथ कंधा मिलाकर हमको आगे बढ़ना है। जबसे हम अपने जीवन के स्वामी स्वयं न रहे तब से संसार बहुत बढ़ चुका है। आज न तो हम लौटकर अपने पुराने स्थान से यात्रा प्रारंभ कर सकते हैं और न आज की विकृत अवस्था को ही प्रकृत अवस्था मानकर चल सकते हैं। हमारा सौभाग्य है कि दास्ता की लंबी अवधि में भी अपनी प्रकृति को व्यक्त करनेवाले महापुरुष हुए है, फलतः आज हमारे जीवन में कितने ही विकार क्यों न आ गए हों, हमारी प्रकृति पूर्णतः आक्रांत होकर मरी नहीं है। हम अपनी इस प्रकृति की अखंडधारा को पहचानें। उसको शक्तिशाली करके विकृति की अस्वच्छता को प्रकृति की प्रवाहजन्य स्वच्छता से धो डालें और इस प्रकार शक्ति संपन्न हो संसार के साथ आगे बढ़ें। एक बात और अपने इस विकास में आज भी हम पूर्ण स्वतंत्र नहीं हैं। संसार के अनेक देशों की वक्र दृष्टि हमारी और लगी हुई है। अतः हमको सावधानी रखनी होगी कि हम अपने जर्जर शरीर को रोगमुक्त करके जब तक स्वस्थ होकर खड़े हों तब तक बीच में ही कोई हमारे ऊपर हावी न हो जाए। साथ ही संसार के अनेक देशों के साथ हमारे संबंध रहे हैं। हमें अनेकों पुराने अप्राकृतिक संबंध तोड़ने पड़ेंगे, नवीन निर्माण करने होंगे। इसमें भी हम ध्यान रखें कि कहीं संबंध तोड़ते हुए हम किसी जीवन–तंतु को आघात न लगा लें और नवीन निर्माण करने में फिर से बंधन में न बंध जाएँ। चारों ओर की उत्तालतरंगों और युद्ध पोतों के बीच से अपनी जर्जर नौका से संसार सागर पार करना है। कार्य कठिन है किंतु करना ही होगा। इसकी सफलता, योग्यता और नेतृत्व की कसौटी है और उसी पर भावी भारत का भाग्य निर्भर है।

पिछले एक हजार वर्ष में हमारे और दुनिया के इस संबंध में विकृति आ गई। हम गुलाम हो गए। हमारा संबंध बाहर के देशों से समानता का नहीं रहा। दासता ने हमारी शक्ति क्षीण कर दी। अब दुनिया के अन्य देशों के साथ सम्मानपूर्वक आदान–प्रदान नहीं रहा, अपितु उन्होंने जबरदस्ती हमको लूटा और बदले में दया के दानस्वरूप जूठन और भिक्षा दी। हमने लूट को रोकने के लिए शक्ति भर प्रयत्न किया और दया के दान को हमारे आत्मसम्मान ने ठुकराया। भिक्षा में भी कई बार विष ही दिया गया, अतः एक अविश्वास ने भी हमारे मन में जड़ जमा ली। हमने भारतीय की रक्षा के लिए सर्वबाह्य विचारों का विरोध किया। किंतु हमारा संबंध तो बाह्य सत्ताओं से आया ही था, दुनिया में होनेवाली विचारक्रांतियों का परिणाम हमारे ऊपर होना ही चाहिए, वह हुआ। शासन वर्ग ने भी हमारे अपनेपन को समाप्त करने के लिए अपनी संस्कृति और सभ्यता का बोझ हमारे ऊपर लादा और वह हमको अनिच्छा से ही कयों न हो, करना ही पड़ा। इसी एक हजार वर्ष का विकृत अवस्था का परिणाम आज का भारतवर्ष है।

अटल बिहारी वाजपेयी ने दीन दयाल उपाध्याय के बारे में कहा है, "वे स्वयं संसद सदस्य नहीं थे, परन्तु वे जनसंघ के सभी संसद सदस्यों के निर्माता थे। 'मै' शब्द के प्रयोग को वे निषिद्ध मानते थे।" राजनीति में पंडित दीन दयाल उपाध्याय के लिए शुचिता प्राथमिक थी। उनके बारे में कहा जाता है कि वे कार्यकर्ताओं के आग्रह एवं तत्कालीन प्रांत प्रचारक भाऊ राव देवरस के कहने पर जौनपुर से चुनाव लड़े। यह वह चुनाव था जिसमे कांग्रेस ने

जातिवाद और भ्रष्टाचार जैसे हथकंडों का इस्तेमाल शुरू कर दिया था। कांग्रेस ने राजपूतवाद का माहौल तैयार किया तो कुछ जनसंघ कार्यकर्ताओं ने दीन दयाल जी का नाम लेकर "ब्राह्मण" कार्ड चलने की योजना तैयार की। जब यह बात पंडित जी को पता चली तो वे बुरी तरह बिगड़ गए और फटकार लगाई। वे चुनाव नहीं जीत सके लेकिन अपनी राजनीतिक शुचिता को कभी हारने नहीं दिया। जौनपुर के लोग उस हार को आज भी एक आदर्श हार की जीत के रूप में याद करते हैं। अपने जीवन में संगठन एवं राजनीति के तमाम आदर्शों को स्थापित करने वाले पंडित दीन दयाल उपाध्याय कुशल संपादक और लेखक भी थे।

पं० दीनदयाल उपाध्याय के मानवतावाद की प्रमुख विशेषता उनका एकात्मावाद सम्बन्धी विचार है। यद्यपि उन्होने मानव जीवन को सुखमय बनाने के लिये उपर्युक्त सामाजिक आर्थिक व्यवस्था की उपयोगिता को स्वीकार किया है फिर भी उनका यह सुनिश्चित मत था कि मानवीय चेतना का निर्माण और विकास किया जाना अतीव आवश्यक है। इसका कारण यह है कि इसके अभाव में अच्छी से अच्छी सामाजिक आर्थिक व्यवस्था भी मनोवांछित परिणाम नही दे सकती। मार्क्स के अनुसार जीवन का निर्धारण चेतना द्वारा नहीं होता मनुष्यों की सामाजिक चेतना उनके जीवन का निर्धारण करती है। अतः मार्क्स के अनुसार यह कहा जा सकता है कि मनुष्य की चेतना उन्हें उनके अस्तित्व का ज्ञान नहीं कराती बल्कि इसके विपरीत उनका सामाजिक अस्तित्व उनकी चेतना को सुनिश्चित करती है।(5) दूसरी ओर दीनदयाल उपाध्याय का विश्वास था कि जीवन या सामाजिक अस्तित्व और चेतना एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं फिर भी उनमें निर्णायक तत्व चेतना का ही होता है। एकात्मक सम्बन्धीं उनकी यह धारणा और उसके फलस्वरूप चेतना के विकास पर पंडित उपाध्याय द्वारा दिया गया बल उनके दृष्टिकोण को मार्क्स के विश्लेषण से पूरी तरह अलग कर देती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. लाल, रमन बिहारीः2003, पन्द्रहवाँ संस्करण "शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार" रस्तोगी पब्लिकेशन्स, शिवाजी रोड, मेरठ–250002
2. लाल, रमन बिहारी व सुनीता पलोड़ः2006, प्रथम संस्करण, "शैक्षिक चिन्तन एवं प्रयोग", आर0लाल बुक डिपो, निकट राजकीय इण्टर कॉलिज, मेरठ–250001
3. मित्तल, एम0एल0ः2004, "उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक", इन्टरनैशनल पब्लिशिंग हाउस,मेरठ
4. माथुर, एस0 एस0ः1997 "शिक्षा के दार्शनिक तथा सामाजिक आधार", विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
5. ऑबेराय, सुरेश चन्द्रः2005 "शिक्षा तकनीकी के तत्व एवं प्रबन्धन", आर0 लाल बुक डिपो, निकट राजकीय इण्टर कॉलेज ,मेरठ–250001

6. पाठक, पी0डी0 व जी0एस0डी0त्यागी:2006, "शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त", विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–282002